दलित संवेदना के आइने में प्रेमचन्द का कथा साहित्य

हरिश्चन्द यादव*

प्रेमचन्द की रचनाओं का दलित विमर्श सम्बन्धित मूल्यांकन करने से पूर्व उस समय (१९२०-१९३६) की दलित-समस्याओं पर राजनीतिज्ञों की सोच, सामाजिक मान्यताओं, दृष्टिकोण, विद्वानों, लेखकों की धारणाओं, विचारों आदि को जानना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसी दौर में स्वतंत्रता-आन्दोलन, नवजागरण, आर्य समाज, ब्रह्म समाज, कांग्रेसी विचार धारा, हिन्दू महासभा, गाँधी जी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि के आन्दोलन अपने शिखर पर थे। हिन्दी साहित्य में यही काल छायावाद के नाम से जाना जाता है। प्रेमचन्द का समूचा रचना कर्म इसी दौर का है। यह समय, गहरी उथल-पुथल से भरा हुआ था। इसी दौर में मजदूर वर्ग, दलित वर्ग, स्त्री वर्ग ने भी अपनी शक्ति का परिचय दिया था। हड़तालों का ऐसा सिलसिला जो इससे पूर्व भारत में कभी नहीं हुआ। दिसम्बर १९१८ में बम्बई के मिलों में हड़ताल शुरू हुई थी और १९१९ तक एक लाख से ज्यादा मजदूर इसमें शामिल हो चुके थे। १९१९ के शुरू में ही रौलट एक्ट पेश किया गया था। और मार्च में इसे लागू कर दिया था। मार्च-अप्रैल में गाँधी जी के आह्वान पर इस एक्ट के विरोध में लोग संघर्ष में कूद पड़े थे। इसी समय में दलित समस्या पर लोगों का ध्यान राजनीति का प्रमुख हिस्सा बन कर उभरा था।

डॉ. अम्बेडकर के आविर्भाव ने मूक दलितों को वाणी दी थी, हजारों साल के शोषण-दमन और सामाजिक उत्पीड़न के विरूद्ध दलितों ने अपनी आवाज उठायी थी। महाराष्ट्र में डॉ. अम्बेडकर का संघर्ष दलितों में एक नयी चेतना जगाने में सफल हुआ था। उत्तर प्रदेश में अछूतानन्द सक्रिय थे।

सन् १९३१ की गोलमेज कांफ्रेंस में डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग की तो गाँधी जी ने इसका पुरजोर विरोध किया। सिर्फ विरोध ही नहीं आमरण अनशन भी किया। १७ अगस्त १९३२ को रैमजे मैकडानल्ड ने अपना निणर्य दिया, जिसमें न केवल मुसलमानों के लिए पृथक चुनाव क्षेत्रों तथा अन्य सुरक्षाओं का समर्थन किया, बल्कि दलितों को एक इकाई के रूप में मान्यता दी गयी थी। इसी के विरोध में गाँधी जी ने 'यरवदा जेल' (पूना) में २० सितम्बर १९३२ को आमरण अनशन शुरू किया। हिन्दू नेताओं और डॉ. अम्बेडकर के बीच एक समझौता हुआ जिसे जिसे 'पूना ऐक्ट' के नाम से जाना जाता है। प्रेमचन्द अपने आरंभिक दौर में आर्य समाज से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। फिर गाँधीवादी, और अन्तिम दिनों में प्रगतिशील लेकिन अपने दलित विषयक लेखन में वे वर्ण-व्यवस्था से उपजी शोषण-दमन की विभिषिका की जगह आर्थिक अंतर्वस्तु को ही ज्यादा महत्व देते रहे है। प्रेमचन्द के इस अंतर्द्वन्द्व को उनकी रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है।

***शोधछात्र, हिन्दी विभाग डा. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र) ४७०००३**

प्रेमचन्द ने दलित विषयक अपनी कहानियों में मंदिर (१९२७), मंत्र (१९२८), घासवाली (१९३१) आदि कहानियों में सुधारवादी आदर्श को ही प्रस्तुत किया है। इन कहानियों में दलित चेतना का कोई सूत्र दिखाई नहीं देता। प्रेमचन्द अपने कई कहानियों में हृदय-परिवर्तन का आदर्श रखते थे, दूसरी और दलितों को शराब न पीने, मरे जानवरों का मांस न खाने की नसीहतें भी देते थे। 'कफन' कहानी के पात्र घीसू, माधव चमार है; लेकिन कहानी में चमारों से संबंधित या दलितों से संबंधित किसी समस्या को नहीं उठाया गया है, केवल उनकी अकर्मण्यता, हृदयहीनता, का ही विस्तृत चित्रण है।

देशी राजा और जमींदार नाममात्र के प्रधान थे- प्रेमचन्द युग में राजाओं और जमींदारों की स्थिति अतिदयनीय थी। वे मानसिक और शारीरिक रूप से ब्रिटिश शासन के गुलाम थे एवं भू-स्वामी होते हुए भी वे ब्रिटिश शासन के एजेन्ट मात्र थे। इसका वर्णन 'रंगभूमि' में है, जहां क्लर्क सरकारी एजेन्ट के पद पर कार्यरत है और सोफिया को बताता है कि ''एजेन्ट के अधिकार बड़े होते हैं- उसका अधिकार सर्वत्र, यहाँ तक कि राजा के महल के अन्दर भी होता है। .... वह राजा के खाने पीने, सोने, आराम करने का समय तक नियत कर सकता है। राजा किससे मिले किससे दूर रहे, किसका आदर करे, किसकी अवहेलना करे..... यहाँ तक कि वह राजा के विवाह का भी निश्चय करता है। बस यों समझो वह रियासत का खुदा होता है।''[१]

इस समय जमींदारों और राजाओं की स्थिति शतरंज के मोहरे की भाँति थी, जहाँ वे इन ब्रिटिश एजेन्ट के हाथों में खिलौना मात्र थे और उनके नियमों का पालन करते हुए उन्हें लागू करने को बाध्य थे, जिसके लिए वे दलितों का शोषण कर दलित मुक्ति को कुचलने का निरन्तर प्रयास करते थे। इसका संकेत 'प्रेमाश्रय' में मिलता है। जहाँ ज्ञानशंकर अपने ससुर राय साहब को भोजन में जहर दे देता है, ताकि उनकी मृत्यु के बाद जायदाद उसकी हो जाए। ससुर राय साहब यह सब जानते हुए उसे शिक्षा देते हैं कि - ''यह जायदाद नहीं है.....यह निरी दलाली है..... हम केवल लगान वसूल करने के लिये रखे गये हैं। इसी दलाली के लिए हम एक दूसरे के खून से अपने हाथ रंगते है। सरकार अपना मतलब निकालने के लिए, हमें इलाके का मालिक कहती है। इस रियासत ने हमें विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया है। हम अब किसी काम के नहीं रहे।''[२] इस देशी राजा और जमींदारों की तुलना ऐसी पालतू चिड़िया से की जा सकती है; जिसके पंख कटे हुए हैं, यह शक्तिहीन चिड़िया स्वयं नहीं उड़ सकती। यह पिंजरे में बंद रहने वाले तोते के समान है, जो वही बोलता और करता है जो सरकारी मालिक कहता है। इसे दाने के रूप में लगान का कुछ भाग मिल जाता है किन्तु अपनी विलासी प्रकृति के कारण अन्य अत्यन्त कमजोर दलितों का दाना छीनकर खाने से भी नहीं चूकती फलतः दलित के घर में दोनों समय चूल्हा नहीं जलता और कभी-कभी भूखे ही सोना पड़ता है। अतः ये जमींदार और राजा आर्थिक रूप से सम्पन्न होते हुए भी अपने निर्णयों में ब्रिटिश शासन के दास थे। इनसे अधिक स्वतंत्रता तो दलित कृषकों की थी जो कम से कम अपनी दिनचर्या को अपनी इच्छानुसार जीते थे। इसलिए 'रंगभूमि' में इन्दूमति कहती हैं-'' मैं नहीं जानती थी कि प्रधान की

दशा इतनी सोचनीय होती है।"[३]आर्थिक रूप से सम्पन्न महेन्द्र सिंह अंग्रेज हुक्म जैसी स्थिति वाला को गुलाम रख सकते हैं।

विधवा पर अत्याचार कहानी 'विध्वंस' में संतानहीन भुनगी विधवा गोंडिन की जीविका का साधन केवल एक भाड़ था, जमींदार ने दो टोकरे दाने भुनने को भेजे। समय कम था काम हुआ नहीं- चपरासियों ने कर्कश स्वर में कहा- क्यों री दाने भुन गये। भुनगी ने निडर होकर कहा-भून तो रही हूँ। .... परिणाम यह हुआ कि उसी रात को भाड़ खोद डाला गया।"[४] भुनगी ने पुनः भाड़ बनाने का प्रयास किया तो जमींदार ने आग लगवा दी, अन्य झोपड़ियाँ भी जल उठी, भुनगी ने कूद कर अपने प्राण जलती आग में दे दिए। इस प्रकार विधवा और अनाथों पर भी प्रहार किया गया, अतः उसे आत्महत्या करनी पड़ी। यह समाज की दूषित प्रकृति को प्रकट करता है।

देशी राजाओं के नैतिक पतन का संकेत 'दीवान' कहानी में मिलता है, रियासत के दीवान, सतिया रियासत के राजा, साहूकार की कन्या से प्रेम करते हैं किन्तु साहू तैयार ही नहीं होता है, फलतः राजा मेहता नामक पात्र को मजबूर करते हैं कि वह कन्या का अपहरण करें किन्तु वह तैयार नहीं होता अतः मेहता को रातों-रात रियासत छोड़नी पड़ती है।[५]

तात्पर्य यह है कि राजाओं के नैतिक पतन के कारण दलित वर्ग राजाओं से आतंकित रहता था और दलित मुक्ति के प्रयास गरीबों के द्वारा सही मायने में शून्य साबित होते थे।

दलित, किसान एवं मजदूर वर्ग निम्न श्रेणी और जाति से संबंधित वर्ग था अतः दलित मुक्ति हेतु उनमें असंतोष और विद्रोह हुआ। मुस्लिम शासन की समाप्ति पर अंग्रेजों ने दलित किसानों पर लगान बढ़ा दिया। लगान न चुकाने की स्थिति में उनकी जमींने छीन ली गई। हिंसात्मक अत्याचार, पिटाई और घर जलाने जैसे अमानवीय कृत्य हुए अतः 'गोदान' उपन्यास में इसका सशक्त चित्रण किया गया है। जहाँ 'गोदान' का मुख्यपात्र होरी ८० रुपये की गाय खरीद कर जिन्दगी भर ऋण में डूबा रहता है। भाई गाय को विष देकर मार डालता और भाग जाता है, तब होरी भाई के परिवार को और खेती को संभालता है। गरीबी और बीमारी में होरी की मृत्यु हो जाती है, तब छोटा भाई हीरा लौटता है और अपनी भाभी धनिया से पंडित के समर्थन में कहता है-"भाभी दिल कड़ा करो, गो दान करा दो ..... और कई आवाजें आई हां, गो दान करा दो, अब यही समय है। धनिया ..... उठी ..... आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठण्डे हाथों में रखकर ..... दातादीन से बोली ..... महाराज घर में गाय है, न बछड़ा, न पैसा। ..... यही इनका 'गोदान' है, और पछाड़ खाकर गिर पड़ी"[६] इस तरह दलित किसानों की स्थिति प्रेमचन्द के युग में अत्यन्त दयनीय थी घर में खाने को पर्याप्त भोजन और वस्त्र उपलब्ध नहीं रहते थे और मरने पर कफन के लिए पैसे भी नहीं रहते थे। साथ ही यह दलित किसान-राजा, जमींदार और मध्यम वर्ग के शोषण से भी परेशान रहते थे अतः इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। तथा प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' में दलित कृषकों की स्थिति का सचित्र वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, कि जिसमें रामसेवक, दातादीन से कहता है-

"यहाँ तो जो किसान हैं, वह सबका नरम चारा है। पटवारी को जो नजराना ..... न दे, तो गाँव में रहना मुश्किल है।

जमींदार के चपरासी और कारिन्दों का पेट न भरे तो निर्वाह न हो। थानेदार कान्सटेबल तो जैसे उनके दामाद है। ..... कभी कानूनगो आते हैं कभी तहसीलदार..... उनके लिए रसद-चोर, अण्डे, मुर्गी, दूध, घी,..... कहाँ तक गिनाऊँ, पादड़ी आ जाता है तो उसे भी रसद देना पड़ता है नही तो शिकायत कर दे।[७] उपरोक्त कथन से यह दृष्टिगोचर होता है कि दलित किसान चारों ओर से शोषण से घिरा रहता है जैसे पटवारी, जमींदार, चपरासी, पुलिस, तहसीलदार, यहाँ तक कि धर्म पुरोहित भी उनका शोषण करने से नहीं चूकते और वह जीवन पर्यन्त ऋणी बना रहता है।

दलितों में गरीबी भी एक अभिशाप होता है, जिसका उल्लेख 'गोदान' उपन्यास में होरी के पास उसके जन्म के पहले का कम्बल है, बाप के साथ उसी में सोया बुढ़ापे में भी यह कम्बल उसका साथी है।[८]

दलित किसान का जीवन संघर्ष में ही समाप्त होता है, वह ऋण से लदा हुआ घुट-घुट कर भरता है। जो दलित के जीवन में गरीबी एक अभिशाप बनकर उसके जीवन को नाटकीय बना देती है। वह अभावों में पैदा होकर आवश्यकताओं से घिरा हुआ जीवन जीता है, आधा पेट भोजन कर तार-तार कपड़ों में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। जहाँ कई बार उसकी अंतिम क्रिया और कफन का प्रबंध भी चंदे के द्वारा करना पड़ता है। उसकी मृत्यु का कारण भी कई बार उसका दलित मुक्ति का प्रयास, विद्रोह और संघर्ष ही होता है।

दलित किसानों के आपसी झगड़े का वर्णन कहानी 'मुक्ति का मार्ग' में है। जहाँ बुद्धू की भेड़े, झींगुर के खेत में होकर निकलती है, झींगुर- "डंडा संभालकर भेड़ों पर पिल पड़ा। . .... किसी की टांग टूटी, किसी की कमर टूटी।"[९]

"बाद में पश्चाताप कर बुद्धू से क्षमा मांगने जा रहा था कि देखता है कि झींगुर के खेत में आग लगी है। और सब कुछ जलकर राख हो जाता है। रंजिश बढ़ती जाती है, बुद्धू की भेड़े मर जाती हैं तो वहीं झींगुर की बछिया मर जाती है। दोनों कंगाल होकर एक ही स्थान पर मजदूरी करते और बाद में दोनों की मित्रता हो जाते हैं।"[१०] प्रेमचन्द के साहित्य में आपसी झगड़ा भी स्थाई रूप से दरिद्र बने रहने का कारण है। आज भी प्रतिदिन के समाचार में हम ऐसी घटनायें सुनते हैं कि धन, जायदाद, खेत आदि के कारण मित्र-मित्र का और भाई-भाई का दुश्मन हो जाता है और हत्या करने से नहीं चूकते हैं। इस प्रकार दलित बने रहने का एक स्थाई कारण यह भी है कि वे एक दूसरे पर अत्याचार करने से भी नहीं चूकते हैं।

"मजदूरों के प्रति अमानवीय व्यवहार का चित्रण उपन्यास 'गवन' में सेठ करोड़ीमल एक पूँजीपति अमीर व्यक्ति है जो छोटी-छोटी बातों पर दलित मजदूरों को हंटरों से पिटवाता

है किन्तु स्वयं चर्बी मिलाकर घी बेचता और लाखों रूपये कमाता है।''[११] इस प्रकार पूँजीपतियों द्वारा दलितों का शोषण होता था और वे उनके अत्याचार का शिकार बनते थे।

मजदूरों का नैतिक पतन का उल्लेख उपन्यास रंगभूमि में दलित सूरदास की जमीन पर सिगरेट फैक्ट्री बन जाने से मजदूर ताड़ी और शराब पीते, जुँआ खेलते और एक चकला घर भी बन गया है।''[१२] तथा उपन्यास 'गोदान' का पात्र ''गोबर मजदूरी करने के बाद ताड़ी पीकर थकान मिटाकर पत्नी झुनिया को पीटता है। बालक लल्लू की मृत्यु के दिन भी झुनिया से प्रेमालाप की अपेक्षा करता है, तो झुनिया के हृदय में यह बात बैठ जाती है कि गोबर उसे सिर्फ भोग की वस्तु समझता है।''[१३]

मजदूर नैतिक पतन की ओर अग्रसर होते हैं और औद्योगिक धन्धों में बुराईयों को साथ लेकर आता है।

कहानी 'सवा सेर गेहूँ' में शंकर नामक दलित गरीब पात्र, विप्र महाराज से 'सवा सेर गेहूँ' उधार लेता है और उसे लौटा न सकने के कारण आजीवन बंधुआ मजदूर बन जाता है और बाद में दलित के पुत्र को भी उस कर्ज को चुकाने के लिए बंधुआ मजदूर बनकर कार्य करना पड़ता है।[१४] वर्तमान भारत में बंधुआ मजदूरी के विरूद्ध कानून पारित हो चुका है किन्तु फिर भी यह प्रथा आज भी विभिन्न ग्रामों में विद्यमान है।

'कर्मभूमि' उपन्यास में एक बीमार व्यक्ति का वर्णन दिया गया है- जिसके बारे में प्रेमचन्द अमरकान्त के माध्यम से कहते हैं- ''मुझे तो उस आदमी की सूरत नहीं भूलती जो छैः महीने से बीमार पड़ा था और एक पैसे की भी दवा न ली थी। इस दशा में जमींदार ने लगान की डिग्री करा ली, और जो कुछ घर में था नीलाम करा लिया। बैल तक बिकवा लिए। .....दलित के बदन पर चिथड़े तक न थे।''[१५] इस तरह से दलितों के पास जीवन-यापन की जरूरी वस्तु भी नहीं होती थी और न ही दवा के लिए पैसे होते थे किन्तु लगान भरना जरूरी था और उसके लिए घर तक नीलाम हो जाते थे और बैल बिकने पर वे खेती करने में भी असमर्थ रहते थे।

अतः आज भी प्रेमचन्द जैसे यथार्थवादी लेखकों की आवश्यकता है जो समाज में जागरूक चेतना का विकास करें और इसे प्रगति के पथ पर आगे बढ़ा सकें। जहाँ दलित पर अत्याचार, अन्याय व शोषण न हो एवं उसके साथ समानता का व्यवहार किया जाए, जहाँ धनी और दलित को समानता से न्याय प्राप्त हो और सभी जातियों व वर्गों का विकास हो सके।

सन्दर्भ सूची

१. 'रंगभूमि', प्रेमचन्द सरस्वती प्रेस, दिल्ली, १९९८, पृ. २७७

२. प्रेमाश्रय भाग २, प्रेमचन्द, भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली, १९८७, पृ. ६४

३. रंगभूमि, प्रेमचन्द सरस्वती प्रेस, दिल्ली, १९९८, पृ. १९२

४. वही, पृ. १९६-१९७

५. मानसरोवर भाग २, प्रेमचन्द सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, १९९०, पृ. ११२-११३

६. गोदान, प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, दिल्ली रचनाकाल, १९३५-३६, पृ. ३००

७. वही, पृ. २९२

८. वही, पृ. १००

९. मानसरोवर भाग ३, प्रेमचन्द सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, १९९०, पृ. ४७१

१०. वही, पृ. १४७-१४८

११. गवन, प्रेमचन्द हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८५, पृ. १४३

१२. रंगभूमि, प्रेमचन्द सरस्वती प्रेस, दिल्ली, १९९८, पृ. ४००

१३. गोदान, प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, दिल्ली रचनाकाल, १९३५, ३८, पृ. २२९, २३०

१४. मानसरोवर भाग ४, प्रेमचन्द सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, १९९०, पृ. ११८

१५. कर्मभूमि प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस दिल्ली रचनाकाल, १९३२, पृ. २७

******